मण्टू मजूमदार और एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य

(Mantoo Majumdar and Another

v.

The State of Bihar)

(27 फरवरी, 1980)

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, ए० सी० गुप्त और आर० एस० पाठक)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2), धारा 167 (2)]—अनिश्चित काल के लिए निरोध—वैधता—पिटीशनरों को अनेक वर्षों से विभिन्न कारागारों में डाले रखना न कोई अन्वेषण किया जाना और न ही अभियुक्तों के विरुद्ध न्यायालय में कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाना—मजिस्ट्रेटों द्वारा बार-बार यन्त्रवत् निरोध प्राधिकृत करते जाना – किसी आदमी को न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त प्रक्रिया को ध्यान में रखे बिना निरन्तर अभिरक्षा में रखना संविधान के भाग III के आज्ञापक आदेशों का उल्लंघन है और ऐसा निरोध अवैध है।

पिटीशनर बिहार के विभिन्न कारागारों में अनेक वर्षों से इस आधार पर पड़े हुए थे कि वे वर्ष 1971 और 1972 के अनेक मामलों में फंसे हुए थे। जेल अधीक्षक द्वारा पेश की गई सारणी से पता चला कि ऐसी अनेक तारीखें दी गई हैं जिनको कैदी 1973 से लेकर 1980 तक संबंधित मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए गए किन्तु उनमें न्यायालय द्वारा यह जांच-पड़ताल नहीं की गई कि अन्वेषण पूरा हो गया है या नहीं। आरोप-पत्र पेश कर दिए गए हैं या नहीं और पिटीशनरों को अभिरक्षा में रखने के लिए औचित्य है या नहीं। सन् 1972 से बिहार में किसी न किसी जेल में अनेक वर्षों से बन्द इन दो मानव-प्राणियों ने जब यह देखा कि उनकी दैहिक स्वाधीनता पर पुलिस, कारागार पदाधिकारियों और मजिस्ट्रेटों द्वारा आघात किया गया है तो उन्होंने

निराश होकर माननीय मुख्य न्यायाधिपति को पत्र लिखे। उपरोक्त बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन उन पत्रों का ही एक विधिक रूप है। पिटीशन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—किसी आदमी को कारागार में डाल देना और तत्पश्चात् उसके बारे में भूल जाना, किसी व्यक्ति को विधि के प्राधिकार के बिना मनमानी अवधि के लिए उसकी दैहिक स्वाधीनता से वंचित कर देना, किसी आदमी को न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त प्रक्रिया को ध्यान में रखे बिना निरन्तर अभिरक्षा में रखना—इन सब बातों से विधिसम्मत शासन के प्रति आस्था डगमगा जाती है और संविधान के भाग III के आज्ञापक आदेशों का उल्लंघन होता है। (पैरा 4)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को समग्रत: 15 दिन से अनधिक की अवधि के लिए ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह ठीक समझे, निरोध प्राधिकृत करने के लिए सशक्त करती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण दैहिक स्वाधीनता की रक्षा करने वाला एक मूल्यवान वर्जन है जिसमें लिखा है कि कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का निरोध "गम्भीर मामलों में 90 दिन से अधिक, और छोटे मामलों में 60 दिन से अधिक प्राधिकृत नहीं करेगा"...उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा...। यदि रक्षक ही भक्षक बन जाएगा तो रक्षा कौन करेगा ? यदि व्यक्तियों की स्वाधीनता की रक्षा करने की बाध्यता वाले विधिक अधिकारी सांविधानिक आज्ञापक आदेशों और संहिता के समादेशों से अनभिज्ञ हैं तो आम नागरिकों के लिए स्वाधीनता कैसे कायम रह सकती है। (पैरा 6)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1978]	[1978] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 1 एस० सी० सी० 275 : **मेनका गांधी बनाम भारत संघ** (Maneka Gandhi *v.* Union of India).	4

आरम्भिक (रिट) अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 1149.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन।

पिटीशनरों की ओर से श्री वी० एन० गनपुले

प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

1980(2) eILR(PAT) SC 1

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से	श्री वी० एन० गनपुले
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

जहां मूलभूत स्तर पर विधि के विवेकशील अभिकरण नहीं हैं वहां कोई संविधान या संहिता या न्यायालय अवैध बन्दीकरण को वर्जित नहीं कर सकता। इन दो कैदियों के जो हमारे समक्ष पिटीशनर हैं, विधिहीन भाग्य का यही एकमात्र स्पष्टीकरण है। सन् 1972 से बिहार में किसी न किसी जेल में अनेक वर्षों से बन्द इन दो मानव-प्राणियों ने जब यह देखा कि उनकी दैहिक स्वाधीनता पर पुलिस, कारागार पदाधिकारियों और मजिस्ट्रेटों द्वारा आघात किया गया है तो उन्होंने निराश होकर माननीय मुख्य न्यायाधिपति को पत्र लिखे। उपरोक्त बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन उन पत्रों का ही एक विधिक रूप है। सामने आए प्रत्यक्ष भयंकर तथ्यों से व्याकुल होकर इस न्यायालय ने एक न्यादेश जारी करने का आदेश दिया। फिर भी अनेक स्थगनों के बावजूद राज्य ने पिटीशनरों के कारावास, उन अपराधों के बारे में, जिनके लिए वे न्यायिक अभिरक्षा में रखे गए थे, कितने समय के लिए और किस प्रक्रम पर कार्यवाही चल रही है आदि मूलभूत तथ्यों को भी प्रस्तुत नहीं किया। अनिश्चित और बहुत लम्बी अवधि तक अपनी स्वाधीनता से वंचित नागरिकों की बाबत बिहार राज्य की यह घोर उदासीनता मानव अधिकारों के लिए राज्य की उपेक्षा का एक विवेकशून्य पहलू है। वस्तुतः राज्य के काउन्सेल ने सुसंगत जानकारी प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया। जब हमारे धैर्य की सीमा टूट गई और हमने देखा कि काउन्सेल असहाय है तो हमें निम्नलिखित आदेश पारित करना पड़ा—

> "ध्यान देने योग्य है कि तारीख 17 दिसम्बर, 1979 के आदेश द्वारा जेल प्राधिकारियों और जिला मजिस्ट्रेट को जिनकी अधिकारिता के अधीन पिटीशनर परिरोध में रखे गए हैं, निदेश दिया गया कि 14-1-80 से पहले स्पष्टीकरण दिया जाए कि पिटीशनर के विरुद्ध कैसे आरोप हैं, प्रत्येक पिटीशनर के मामले में विचारण किस प्रक्रम पर है और विचारण कार्यवाहियों में क्यों विलम्ब हुआ है। आश्चर्य है कि उन्हें राज्य के माध्यम से संसूचना दिये जाने के बाद राज्य

काउन्सेल का कहना है कि सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट और जेल प्राधिकारियों को टैलेक्स द्वारा संदेश भेजा गया था फिर भी इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में कोई जानकारी नहीं भेजी गई है। अतः हम जेल प्राधिकारियों और जिला मजिस्ट्रेट को यह हेतुक दर्शित करने के लिए सूचना भेजने के लिए बाध्य हैं कि इस न्यायालय के निदेश के उल्लंघन के लिए उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई क्यों न की जाए। न्यायालय सूचना जारी करेगा जो इस निदेश के साथ इन प्राधिकारियों पर व्यक्तिगत रूप से तामील की जाएगी कि वे 25 फरवरी, 1980 को स्वयं न्यायालय में हाजिर हों। राज्य के काउन्सेल ने सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट और जिला प्राधिकारियों के नाम 12 फरवरी, 1980 तक भेजने का वचन दिया है। यह मामला इस कार्यालय रिपोर्ट के साथ 13 फरवरी, 1980 को रखा जाए कि क्या काउन्सेल ने यथा ऊपर निर्दिष्ट सम्बन्धित प्राधिकारियों के नाम और पते प्रस्तुत कर दिये हैं।"

2. जब न्यायालय का निदेशात्मक आदेश मात्र निन्दात्मक विचार प्रकट करने से आगे बढ़कर व्यतिक्रम करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की ओर अग्रसर हुआ तो स्थिति बदलने लगी और 25 फरवरी, 1980 को सुनवाई के समय जिला अधीक्षक और जिला मजिस्ट्रेट, जो एक अर्थ में पिटीशनरों की अभिरक्षात्मक अवस्था के लिए विधायी हैसियत में उत्तरदायी थे, स्वयं हाजिर हुए और उन्होंने इन कैदी व्यक्तियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देने में व्यतिक्रम या विलम्ब के लिए क्षमा करने की प्रार्थना की। केन्द्रीय जेल के अधीक्षक ने पूरे तथ्य पेश कर दिये हैं जोकि निरोध की अप्रतिवाद्य अवैधता का पता लगाने और पिटीशनरों को जमानत पर रिहा करने का निदेश देने में हमें समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

3. विधि वह है जो विधि करती है, न कि जो कुछ विधि पुस्तकों में लिखी हुई है जो कि जेल के सीखचों में बन्द लोगों की पहुंच से बाहर हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, संविधान का अनुच्छेद 21 और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) प्रत्येक पिटीशनर के लिए निरर्थक है। अनुच्छेद 21 निम्नलिखित शब्दों में दैहिक स्वाधीनता की गारंटी देता है—

> "किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा।"

1980(2) eILR(PAT) SC 1

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में निम्नलिखित आज्ञापक आदेश अन्तर्विष्ट हैं—

"(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे, इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पन्द्रह दिन से अधिक न होगी, निरुद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरुद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता है :

परन्तु—

(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध पन्द्रह दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है, किन्तु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध—

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण ऐसे अपराध के संबंध में है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय है;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अपराध किसी अन्य अपराध के संबंध में है,

और, यथास्थिति नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, और यह समझा जाएगा कि इस धारा के अधीन

जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए उस अध्याय के उपबन्धों के अधीन छोड़ा गया है,

(ख) कोई मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन किसी अभिरक्षा में निरोध तब तक प्राधिकृत नहीं करेगा जब तक अभियुक्त उसके समक्ष पेश नहीं किया जाता है;

(ग) कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत न करेगा।

4. **मेनका गान्धी वाले मामले**[1] में और तत्पश्चात् अनेक मामलों में इस न्यायालय ने व्यक्तियों के निरोध को न्यायोचित ठहराने के लिए निष्पक्ष प्रक्रिया की आवश्यकता पर जोर दिया है। किसी आदमी को कारागार में डाल देना और तत्पश्चात् उसके बारे में भूल जाना, किसी व्यक्ति को विधि के प्राधिकार के बिना मनमानी अवधि के लिए उसकी दैहिक स्वाधीनता से वंचित कर देना है, किसी आदमी को न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त प्रक्रिया को ध्यान में रखे बिना निरन्तर अभिरक्षा में रखना—इन सब बातों से विधिसम्मत शासन के प्रति आस्था डगमगा जाती है और संविधान के भाग III के आज्ञापक आदेशों का उल्लंघन लागू होता है। फिर भी निश्चित रूप से होता यही है, जोकि प्रस्तुत मामले में हुआ है।

5. फाइल की गई विवरणी में खुलकर दिये गये भयानक तथ्य ये हैं कि दो पिटीशनर बिहार के विभिन्न कारागारों में अनेक वर्षों से इस आधार पर पड़े हुए हैं कि वे 1971 और 1972 के अनेक मामले में फंसे हुए हैं। प्रति शपथ-पत्र के साथ एक लम्बी सूची लगाई गई है किन्तु हमारे नाम पर यह बात बट्टा लगाती है कि कारागार में डालने के पासपोर्ट के बारे में दण्ड संहिता की धाराओं का उल्लेख करने के अलावा मामलों के अन्वेषण का कोई उल्लेख नहीं है और न ही कोई से भी अभियुक्त के विरुद्ध एक भी आरोप-पत्र न्यायालय के समक्ष पेश किया गया। यह बात हमें आश्चर्यचकित करती है कि मजिस्ट्रेट भी अपनी प्रमुख बाध्यता से विमुख रहे हैं, संभवतः, वे कार्य की अधिकता से कलांत हैं और उन्हें दूसरों की स्वतन्त्रता में कोई रुचि नहीं है। यदि हम जेल अधीक्षक द्वारा पेश की गई सारणी को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि ऐसी अनेक तारीखें दी गई हैं जिनको कैदी 1973 से लेकर

---

[1] [1978] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 1 एस० सी० सी० 275.

1980(2) eILR(PAT) SC 1

1980 तक संबंधित मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए गये हैं, किन्तु उसमें न्यायालय द्वारा यह जांच-पड़ताल नहीं की गई कि अन्वेषण पूरा हो गया है या नहीं, आरोप-पत्र पेश कर दिए गए हैं या नहीं और पिटीशनरों को अभिरक्षा में रखने के लिए औचित्य है या नहीं।

6. ऊपर उद्धृत धारा 167(2) मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को समग्रत: 15 दिन से अनधिक की अवधि के लिए ऐसी अभिरक्षा में जैसी वह ठीक समझे, निरोध प्राधिकृत करने के लिए सशक्त करती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण दैहिक स्वाधीनता की रक्षा करने वाला एक मूल्यवान वर्जन है जिसमें लिखा है कि कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का निरोध गम्भीर मामलों में 90 दिन से अधिक, और छोटे मामलों में 60 दिन से अधिक प्राधिकृत नहीं करेगा "···उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा···।" प्रस्तुत मामले में 60 दिन नहीं बल्कि छह वर्ष बीत चुके हैं और 90 दिन नहीं बल्कि 1900 या अधिक दिन बीत चुके हैं और फिर भी संबंधित मजिस्ट्रेट उन उपबंधों को ध्यान में रखे बिना जो उन पर ऐसे निरोध की अपेक्षा करने वाली कार्यवाहियां चलाने की बाध्यता डालते हैं, बार-बार यंत्रवत निरोध प्राधिकृत करते जा रहे हैं। संक्षेप में, पुलिस ने अपने कृत्य का और तत्पर अन्वेषण का परित्याग कर दिया है। कारागार के कर्मचारियों ने यह जानने का कष्ट नहीं किया कि कैदी उनकी अभिरक्षा में कब तक रखे जाएं और इन सबसे गम्भीर बात यह है कि सम्बन्धित न्यायिक अधिकारियों ने अपने बन्दीकरण सम्बन्धित प्राधिकरण समय-समय पर प्रदान करते हुए वर्षों से रोजमर्रा के ढर्रे से निरोध आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं। हमें नहीं पता कि हमारे समक्ष वाले पिटीशनरों की भांति कारागार में कितने दूसरे लोग कष्ट भोग रहे हैं। 'यदि रक्षक ही भक्षक बन जाएगा तो रक्षा कौन करेगा ?' यदि व्यक्तियों की स्वाधीनता की रक्षा करने की बाध्यता वाले विधिक अधिकारी सांविधानिक आज्ञापक आदेशों और संहिता के समादेशों से अनभिज्ञ है तो नागरिकों के लिए स्वाधीनता कैसे कायम रह सकती है।

7. श्री गनपुले न्यायमित्र के रूप में हाजिर हुए हैं। हमें अवश्य ही उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करनी चाहिए और साथ ही हम राज्य की ओर से श्री यू० पी० सिंह द्वारा किए गए निष्पक्ष और स्वतंत्र कथन पर अपना परम-संतोष दर्ज करते हैं। श्री यू० पी० सिंह ने ठीक ही कहा कि धारा 167(2) की दृष्टि से, निरन्तर निरोध प्रतिरक्षा के योग्य नहीं है।

8. हम निदेश देते हैं कि दो पिटीशनरों को प्रतिभुओं के बिना उनके अपने बंधपत्र पर तुरन्त रिहा कर दिया जाए। इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिभुओं का होना जमानत के लिए आवश्यक संघटक नहीं है। अतः हम निदेश देते हैं कि पिटीशनरों से व्यक्तिगत जमानत लेकर उन दोनों को ऐसी अन्य विधिक कार्यवाहियों के अधीन रहते हुए छोड़ दिया जाएगा जिन्हें राज्य चलाना चाहे, यदि ऐसा अपेक्षित है।

9. हम पहले यह कह चुके हैं कि कैदियों की इस भारी संख्या में ऐसे अनेक अन्य कैदी हो सकते हैं जिनकी विधिक अज्ञानता और आर्थिक गरीबी ने उन्हें बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन के द्वारा इस न्यायालय में या अन्य न्यायालयों में समावेदन करने से निषिद्ध कर दिया हो। यह एक दुखद स्थिति है कि बिहार राज्य कैदियों के प्रति निश्चेष्ट या निर्दयी रहा है जब कि बिहार राज्य में कैदियों का भण्डार भरा पड़ा है। किस लिए, कोई नहीं जानता। यदि न्यायिक अनुभवयुक्त कोई विशेष अधिकारी या दाण्डिक न्यायालय से परिचित कोई अन्य विधिक अधिकारी सभी कैदियों का विस्तृत सर्वेक्षण और अध्ययन करे और यह पता लगाए कि क्या अवैध अभिरक्षा विशाल पैमाने पर की गई है, तो राज्य के प्राधिकारियों की ओर से यह प्रायश्चित का और आत्मशुद्धिकरण का कार्य हो सकता है। अन्ततोगत्वा, राज्य जन-स्वातंत्र्य का संरक्षक भी है अतः वह उन कैदियों को जिन्हें निष्पक्ष प्रक्रिया का पालन किए बिना अभिरक्षा में रखा गया है, मुक्त करने के लिए कदम उठाए।

10. इन निदेशों के साथ हम निदेश देते हैं कि पिटीशनरों को एक-एक हजार रुपए की राशि के उनके अपने बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाए।

पिटीशन मंजूर किया गया।

कृ०